Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

कृदन्त में तकनीकी शब्दों की व्याख्या

डॉ. सुभाषचन्द्र मीणा
सहायकाचार्य (व्याकरण विभाग) केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, क. जे. सोमैया परिसर, मुम्बई।

Article Info
Volume 4 Issue 4
Page Number : 37-43
Publication Issue :
July-August-2021
Article History
Accepted : 02 July 2021
Published :18 July 2021

सारांश- पाणिनीय अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय में धातु से होने वाले प्रत्ययों का विधान किया गया है। धातु से दो प्रकार के ही प्रत्यय होते हैं तिङ् प्रत्यय तथा कृत्प्रत्यय। 'कृदतिङ्' से जिनकी कृत्संज्ञा होती है वे सभी कृत्प्रत्यय कहलाते हैं जैसे अण् अत्, अनीयर। धातु से होने वाले प्रत्ययों में तिङ् प्रत्ययों को छोडकर शेष सारे प्रत्यय कृत् कहलाते हैं। कृत् प्रत्यय लगने से वह कृदन्त बन जाता है तथा उसकी प्रतिपादिक संज्ञा होने से पश्चात् विभक्ति आने पर पद बन जाता है। कृदन्त प्रकरण में पठित सूत्रों में व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से विभिन्न तकनीकी शब्दों का प्रयोग हुआ है। सूत्रों में पठित तकनीकी शब्दों का विवेचन यहाँ क्रमशः किया जा रहा है।

मुख्य शब्द- तकनीकी, कृदन्त, पाणिनीय, अष्टाध्यायी, प्रत्यय, पारिभाषिक, सूत्र।

कृत्य- "कृत्य" शब्द का शाब्दिक अर्थ – वह जो करने योग्य हो या किया जाये। पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में यह पद 'कृत्य' प्रत्ययों के लिए एक पारिभाषिक शब्द की तरह प्रयोग में लाया जाता है। पाणिनि ने 'कृत्याः' सूत्र में 'कृत्य' शब्द का प्रयोग किया है। पाणिनि ने 'कृत्य' शब्द की पारिभाषिक व्याख्या नहीं की हैं। 'कृत्याः' सूत्र से लेकर 'ण्वुल्तृचौ'[1] पर्यन्त जितने भी प्रत्ययों का विधान किया गया है उन्हें 'कृत्य' प्रत्यय कहा जाता है। उनकी कृत्य संज्ञा भी होती है। न की 'कृत्य' के साथ 'कृत्' संज्ञा भी होती है। 'कृत्य' प्रत्ययों की संख्या सात होती है क्रमशः – तव्यत् तव्य, अनीयर, यत् क्यप्, ण्यत् तथा केलिमर्। कैयट, 'भट्टोजिदीक्षित' तथा हरदत्त सभी ने 'कृत्याः' इतना ही सूत्र का स्वरूप माना है। 'कृत्य' संज्ञा का फल 'कृत्यानां कर्तरि वा' तथा 'कृत्यैरधिकार्थवचने'[2] में प्राप्त होता है। यथा – गन्तव्यः (गम् तव्यत्)

'कृत्यानां कर्तरि वा'[3] सूत्र में 'कृत्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। कृत्यप्रत्यान्तों के प्रयोग में अनभिहित कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी होती है। 'कृत्य' प्रत्यय भाववाच्य और कर्मवाच्य में होते हैं। यथा – देवदत्तस्य कर्तव्यः, 'गन्तव्या ते' वार्तिककार कात्ययन ने भी 'उभयप्राप्तौ कृत्ये षष्ठ्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः' इस वार्तिक में 'कृत्य' पद का प्रयोग किया है। यदि कर्त्ता व कर्म दोनों में षष्ठी की प्राप्ति हो तो दोनों में षष्ठी का निषेध होता है। यथा – नेतव्या ग्रामम् अजा देवेन।

'कृत्यैरधिकार्थवचने' सूत्र में 'कृत्य' शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है कि अधिकार्थ वचन गतिमान होने पर कर्तृवाची और करणवाची तृतीयान्त सुबन्त का समर्थ कृत्यप्रत्ययान्त सुबन्तों के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है। यथा – 'काकपेया' यहाँ काकैः पेया यह शब्द कृत्य संज्ञक हो तभी समास होगा। यहाँ कर्त्ता में तृतीया है।

कु- 'कु' शब्द का शाब्दिक अर्थ – क वर्ग के अन्तर्गत आने वाले व्यंजन क, ख, ग, घ, ङ्। क वर्ण के साथ उ स्वर जोडे जाने पर उससे पूरे वर्ग का बोध कराने वाला वर्ण 'कु' कहलाता है। पाणिनि ने 'कु' शब्द का प्रयोग निम्न सूत्रों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रुप से किया है क्रमशः –

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

'चजोः कु घिण्यतोः'[4] सूत्र में कु शब्द का प्रयोग हुआ है। घित् या ण्यत् परे रहते चकार और जकार के स्थान पर 'कु' अर्थात् क वर्ग (क, ख, ग, घ, ङ् आदेश हो जाता है। यथा – पाकः (पच्+घञ्) यहाँ 'पच्' के 'च' कार को 'क' आदेश हुआ।

'चोःकुः' सूत्र में भी 'कु' शब्द का प्रयोग हुआ है। झल् परे रहते या पदान्त में चवर्ग के स्थान पर 'कु' अर्थात् कवर्ग (क, ख, ग,घ, ङ्) होता है। यथा – बिभ्रक्षुः (भ्रस्ज्+सन्), पक्तुम् (पच्+तृच्), यहाँ 'पच्' के चकार को क आदेश हुआ है।

'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' सूत्र में भी 'कु' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'क्विन्' प्रत्यय हुआ है जिस धातु से उसको पदान्त में 'कु' अर्थात् कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ्) आदेश होता है। यथा – क्रुङ्भिः (क्रुञ्च्+भिस्)

'कु तिहोः' सूत्र में 'कु' शब्द का प्रयोग हुआ हैं। तकार या हकार विभक्ति परे 'किम्' के स्थान पर 'कु' आदेश होता है। यथा किम् +तसिल = कुतः।

यहाँ 'किम्' के स्थान पर 'कु' आदेश होता है। 'अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः'[5] सूत्र में अप्रत्यक्ष रुप से 'कु' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका विधान न किया गया हो ऐसा अण् वर्ण तथा उदित् वर्ण अपने स्वरुप तथा अपने सवर्ण का भी ग्रहण कराते हैं। यथा – 'कु' का कोई सवर्ण नहीं होता है। इससे यहाँ आदि वर्ण 'क्' के स्वरुप का तथा उसके सवर्णो का ग्रहण हुआ है। अतः 'कु' कहने से अपने क, ख, ग, घ ङ् सवर्णो का ज्ञान करवाता है।

न्यङ्क्वादि- पाणिनीय व्याकरण में शब्दों का एक समुह जिसमें आदि शब्द 'न्यङ्कु' हो तथा शेष अन्य शब्द हो तो आदि शब्द के आधार पर इसे 'न्यङ्क्वादि' कहते है। पाणिनि ने 'न्यङ्क्वादि' शब्द का प्रयोग 'न्यङ्क्वादीनां च' सूत्र में किया है। 'न्यङ्क्वादि' शब्द क्रमशः – 'न्यङ्कु मद्गु भृगु दूरेपाक फलेपाक क्षणेपाक दूरेपाका फलेपाका दूरेपाकु तक्र वक्र व्यतिषङ्ग अनुषङ्ग अवसर्ग उपसर्ग श्वपाक मांसपाक मूलपाक कपोतपाक उलूकपाक । संज्ञायां मेघनिदाघावदाघार्घाः । न्यग्रोध वीरुत् । इति न्यङ्क्वादयः ।'। यह सभी शब्द न्यङ्क्वादि गणपाठ मे पठित शब्द है। यथा – न्यङ्कुः (नि+अञ्)

नन्द्यादि- पाणिनीय व्याकरण में धातुओं का एक समुह, जिनका प्रथम पद नन्दि हो तथा शेष अन्य पद हो तो उसे नन्द्यादि कहा जाता है। पाणिनीय व्याकरण में 'नन्द्यादि' शब्द का प्रयोग 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'[6] सूत्र में किया गया है। नन्दि आदि धातुओं से 'ल्यु' प्रत्ययका विधान होता है। नन्दि आदि गणपाठ पाणिनीय गणपाठ में उपलब्ध होते हैं। इन गणपाठों में धातुओं का पाठ न होकर प्रातिपदिकों का पाठ होता है। नन्द्यादि शब्द क्रमशः – 'नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्धिशोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम्। नन्दनः वाशनः मदनः दूषणः साधनः वर्धनः शोभनः रोचनः।' यथा – नन्दनः (नन्द्+ल्यु), मदनः (मन्द्+ल्यु)

पचादि- पाणिनीय व्याकरण में शब्दों का एक समुह, जो पच् से आरम्भ होता हो तथा शेष अन्य हों तो उसे पचादि कहते हैं। पाणिनि ने 'पचादि' शब्द का प्रयोग 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' सूत्र में किया है। 'पच्' आदि धातुओं से 'अच्' प्रत्यय होता है। पचादिगण पाणिनीय गणपाठ में उपलब्ध होते हैं। इन गणपाठों मे धातुओं का पाठ न होकर प्रातिपदिकों का पाठ होता है। पचादि शब्द क्रमशः –

'पच वच वप वद चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् गाहर् सरट् देवर् जर मर क्षम सेव मेष कोप मेध नर्त व्रण दर्श सर्प जारभर श्वपच पचादिराकृतिगणः ॥' यथा – पचः (पच्+अच्), वचः (वच्+अच्) वपः (वप्+अच्) यहाँ पच्, वच् तथा वप् पचादिगण में पठित शब्द है।

निष्ठा- पाणिनीय व्याकरण में विभिन्न अर्थों में प्रयोग में लिया जाने वाला क्त प्रत्यय कृते संज्ञक है। 'क्त' प्रत्यय में क् कार इत् संज्ञक है तथा 'त' शेष बचता है। पाणिनीय व्याकरण में 'क्त' एवं 'क्तवतु' प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है। कोई ऐसा कार्य जो विगत काल में सम्पन्न हो चुका हो भूतकालिक अर्थ में धातु से परे निष्ठा संज्ञक क्त प्रत्यय होता है तथा इस प्रत्यय की कृत् संज्ञा होती है। भाववाच्य और कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय होता है। यथा – स्नातम् (स्ना+क्त), स्तुतः (स्तु+क्त)

'क्तवतु' एक कृत् प्रत्यय है। क् कार तथा उकार की इत् संज्ञा होने के कारण 'तवत्' शेष रहता है। पाणिनीय व्याकरण में 'क्त' की तरह 'क्तवतु' प्रत्यय की भी निष्ठा संज्ञा होती है।[7] 'क्तवतु' प्रत्यय कर्ता के अर्थ में होता है। इस प्रत्यय की कृत् संज्ञा होती है। भूतकालिक अर्थ में कर्ता अर्थ में निष्ठा संज्ञक 'क्तवतु' प्रत्यय होता है। यथा – स्नातवान (स्ना+क्तवतु), पठितवान् (पठ+क्तवतु)

स्त्रीलिङ्ग वाची पद बनाने के लिए 'क्तवतु' प्रत्ययान्त उगिदन्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा होकर 'ङीप्' प्रत्यय होता है। यथा – भवती

अप्रथमासमानाधिकरण- 'अप्रथमासमानाधिकरण' पद का प्रयोग पाणिनीय व्याकरण में हुआ है। प्रथमा शब्द विभक्ति विशेष' सु', औ, जस्, के लिये व्याकरण शास्त्र में रुढ़ है। उस प्रथमा विभक्ति से अन्य द्वितीयादि विभक्ति 'अप्रथमा' शब्द से गृहीत होती है। 'प्रथमायाः अन्या अप्रथमा द्वितीयादिः', अप्रथमान्त तथा द्वितीयान्त आदि के साथ समानाधिकरण समान अर्थ वाला होना अप्रथमासमानाधिकरण कहलाता है। पाणिनि ने 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे'[8] सूत्र में अप्रथमासमानाधिकरण शब्द का प्रयोग किया है। अप्रथमान्त अर्थात् द्वितीयान्त आदि पदों के साथ यदि लट् का समानाधिकरण हो तो लट् के स्थान पर 'शतृ' व 'शानच्' प्रत्यय होते हैं। यथा – पचन्त देवदत्तम पश्य।, पचमानं देवदत्तं पश्य।, पचता चैत्रेण कृतम्।

अध्यै, अध्यैन्- वैदिक साहित्य में क्रियार्थक तुमुन् के अर्थ में धातु से किया जाने वाला कृत् प्रत्यय 'अध्यै' तथा 'अध्यैन्' है। 'तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन् कध्यैकध्यैन्शध्यैन्तवैलवेङ् तवेनः'[9] – इस सूत्र में 'अध्यै' तथा 'अध्यैन', पद का प्रयोग पाणिनि ने किया है। वेद के विषय में 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में धातु से 'अध्यै' तथा 'अध्यैन्' प्रत्यय होते हैं। ये प्रत्यय भाव अर्थ में होते है। यथा – पिबध्यै।

'अध्यै' शब्द का प्रयोग तैत्तरीय संहिता 'कर्मण्युपाचरध्यै' तथा शौनकीय संहिता 'यजध्यै' में भी हुआ है। 'अध्यै' प्रत्यय होने पर 'आद्युदात्तश्च' सूत्र से 'अ' को उदात्त होता है। प्रकृत सूत्र से यह आद्युदात्त हुआ है। यथा – कर्मण्युपाचरध्यै।

आनाय्य- 'आनाय्य' श्रौत यज्ञों में प्रयुक्त एक पारिभाषिक पद है। जिसका प्रयोग अनित्य दक्षिणाग्नि के अर्थ में होता है। पाणिनि ने 'आनाय्य' पद का प्रयोग 'आनाय्योऽनित्ये' सूत्र में किया है।अनित्य अर्थ गम्यमान होने पर 'आनाय्य' शब्द निपातन से सिद्ध है। यथा – 'आनाय्यः'। याज्ञिक प्रक्रिया के अनुसार अग्नियाँ तीन होती है – गार्हपत्य, आहवनीय तथा दाक्षिणाग्नि। इन तीनों के शमन हो जाने पर 'पुनराधान' कर्म किया जाता है। 'अपवृक्ते कर्मणि लौकिकः सम्पद्यते' के अनुसार प्रत्येक कर्म के समय आहवनीय और दक्षिणाग्नि का अग्नि प्रणयन द्वारा पुनः संस्कार किया जाता है। आहवनीय के लिए अग्निप्रणयन गार्हपत्य से ही होता है। यज्ञ में दक्षिणाग्नि का संस्कार दो प्रकार से किया जाता हैः-1. गार्हपत्य अग्नि के द्वारा, 2. वैश्यकुल या भ्राष्ट्र। गार्हपत्य अग्नि नियत नहीं होती है। वैश्यकुल इत्यादि से लाई गई अग्नि का स्थान नियत होता है। 'वैश्यकुलाद्वित्तवतो भ्राट्राद्वा गार्हपत्याद्वा'

पाणिनि के अनुसार जिस दक्षिणाग्नि का उत्पत्ति स्थान आह्वनीय के समान है अर्थात् जो यजमान गार्हपत्याग्नि से ही दक्षिणाग्नि का प्रणयन करता है वह दक्षिणाग्नि 'आनाश्य' कहलाती है। जबकि वैश्यकुल से प्राप्त दक्षिणाग्नि तथा अनित्य घटपटादि 'आनेय' कहलाते हैं। इस कथन को सिद्ध करते हुए महाभाष्य में कहा है कि - 'आनाय्योऽनित्य इति चेद् दक्षिणाग्नौ कृतं भवेत् एक योनौ तु तं विद्यादानेयो ह्यन्यथा भवेत्।'[10]

आन- कृत् प्रत्यय 'कानच्' शानच् अथवा चानश् आदि जो आत्मनेपदी धातुओं से लट् लकार के स्थान में वर्तमान कालिक कृदन्त प्रयोग बनाने के लिए 'आन' का प्रयोग किया जाता है। पाणिनि ने 'लिटः कानज्वा' सूत्र में आन का प्रयोग किया है। वेद में भूतकाल में विहित लिट् के स्थान पर विकल्प से कानच् प्रत्यय होता है। कानच् के चकार व ककार की इत् संज्ञा होती है तथा 'आन' शेष रहता है। जो आत्मनेपदी धातुओं से परोक्ष भूत के अर्थ में कृदन्त रुप बनाते हैं। यथा – चिक्यानः, सुषुवाणः।

क्यङ्- 'क्यङ्' एक कृत् प्रत्यय है, जिसमें क कार तथा 'ङ्' कार इत् संज्ञक होने के कारण 'य' शेष रहता है। पाणिनि ने 'क्यङ्' पद का प्रयोग 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' सूत्र में किया है। किसी भी उपमानवाची कर्तृभूत सुबन्त पद से आचरण अर्थ में विकल्प से 'क्यङ्' प्रत्यय लगाने के बाद आत्मनेपदी प्रत्यय जोडे जाते है। ङित् होने से आत्मनेपद होता है। यथा – श्येनायते (श्येन+क्यङ्), स्वप्नायते (स्वप्न+क्यङ्) तथा 'भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः'[11] सूत्र से भृश आदि गण में पठित शब्दों से 'भू' धातु के अर्थ में विकल्प से 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। यथा – अभृशो भृशो भवति काकः श्येनायते।

पाणिनीय व्याकरण के सूत्रों में अप्रत्यक्ष रुप से भी 'क्यङ्' पद का प्रयोग हुआ है। कष्ट शब्द से परे तथा कुटिलता अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। यथा – कष्टाय (कष्ट+क्यङ्)। रोन्मन्थ और तप कर्म से वर्त्ति तथा चरि अर्थों में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है विकल्प से। यथा – रोमन्थं वर्त्तयति गौः। तपस्यति। वाष्प और उष्म से उद्वमन अर्थ में विकल्प से 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। यथा – वाष्पायते (वाष्प+क्यङ्)। वार्तिककार कात्यायन के अनुसार फेन शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में भी 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। यथा – फेनायते (फेन+क्यङ्)। शब्द, वैर , कलह, अभ्र, कण्व, तथा मेघ अर्थ में कर्मभूत शब्दों से करना अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। यथा – शब्दायते (शब्द+क्यङ्), वैरायते (वैर+क्यङ्)। कर्त्ता सम्बन्धी सुखादि शब्दों से वेदना अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है। यथा – वेदयते, सुखायते।

कुरच्- 'कुरच्' एक कृत् प्रत्यय है। विद्, भिद् और छिद् धातुओं में लगाया जाने वाला प्रत्यय 'कुरच्' है। पाणिनि ने 'कुरच्' शब्द का प्रयोग 'विदिभिदिच्छिदेः कुरच्'[12] सूत्र में किया है। तच्छीलादि कर्ता अर्थ में वर्तमान काल में विद्, भिद् तथा छिद् धातुओं से 'कुरच्' प्रत्यय होता है। 'कुरच्' के 'च्' की इत् संज्ञा होती है तथा 'उर' शेष रहता है। यथा – विदुरः (विद्+कुरच्), भिदुरः (भिद्+कुरच्)

वार्तिककार कात्यायन ने भी 'व्यधेःसम्प्रसारणं कुरच्च वक्तव्यः' इस वार्त्तिक में 'कुरच्' शब्द का प्रयोग किया है। व्यध् धातु से कुरच् होता है तथा सम्प्रसारण भी होता है। यथा – विधुरः (विध् + कुरच्)

कानच्- 'कानच्' एक कृत प्रत्यय है। पाणिनि ने 'कानच्' पद का प्रयोग 'लिटः' कानज्वा सूत्र में किया है। भूतकालिक अर्थ में 'कानच्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। पारिभाषिक रुप की दृष्टि से वैदिक साहित्य में भूतकालिक अर्थ में विहित लिट् लकार के स्थान पर विकल्प से 'कानच्' प्रत्यय होता है। कानच् के चकार व ककार की इत् संज्ञा होती है। तथा 'आन' शेष रहता है यथा – 'चिक्यानः' (चि+कानच्+लिट्) सुषुवाणः पपिवान्, सुषुवाणः, चक्राणः ईजाना।

क्तिच्- 'क्तिच्' एक कृत् प्रत्यय है जो कि धातुओं से संज्ञा शब्द बनाने के लिए आशीर्वादात्मक अर्थ में जोड़ा जाता है। आशीर्वादात्मक अर्थ में संज्ञा गतिमान रहने पर क्तिच् प्रत्यय होता है। 'क्तिच्' प्रत्यय के 'क' कार तथा 'च' कार की इत् संज्ञा होती है तथा 'ति' शेष रहता है। यथा – तन्तिः (तन्+क्तिच्)

'क्तिचि दीर्घश्च' सूत्र में भी 'क्तिच्' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'क्तिच्' परे रहने पर अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश धातु के अनुनासिक का लोप तथा दीर्घादेश नहीं होता है। यथा यान्तिः (यम्+क्तिच्), यहाँ अनुनासिक का प्रतिषेध हुआ है।

अद्व्युपसर्ग- जिसके आरम्भ में दो या अधिक उपसर्ग न हों अर्थात् आदि में मात्र एक उपसर्ग हो वह 'अद्व्युपसर्ग' कहलाता है। 'छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य'[13] सूत्र से घ प्रत्यय परे रहते छादि अंग, जो दो उपसर्गों से युक्त नहीं है, की उपधा को ह्रस्व होता है। यहाँ पर 'अद्व्युपसर्गस्य' अर्थात् जो दो उपसर्गों से युक्त नहीं है ऐसे अंग की उपधा को ह्रस्व होता है। यथा – प्रच्छदः।

अन्तोदात्त- 'अन्तोदात्त' शब्द का अर्थ – ऐसा पद, जिसका अन्तिम स्वर उदात्त हो। धातुएं, अपरिष्कृत संज्ञा तथा समस्त पदों का अन्तिम स्वर सामान्येन उदात्त होता है।

'धातोः' यह अधिकार सूत्र है। तृतीय अध्याय की समप्ति पर्यन्त इस सूत्र का अधिकार है। जिन प्रत्ययों का विधान किया जायेगा वे धातु से परे होंगे। धातु से परे तीन प्रकार के प्रत्यय होते है। यह सभी प्रत्यय अन्तोदात्त होते हैं।

1. तिङ् – तिङन्त शब्द को क्रियारुप कहते हैं। यथा – पठ्+तिप्।
2. तिङ् को छोड़कर कहे गये शेष प्रत्यय 'कृत्' कहलाते हैं। यथा कृ+ण्वुल् = कारकः।
3. शप्, श्यन्, श्नम् आदि विकरण प्रत्यय धातु से विहित होते हैं। यह सभी प्रत्यय अन्तोदात्त होते हैं।

'समासस्य' सूत्र में पाणिनि ने 'समास' को अन्तोदात्त कहा है। समास के भिन्न पदों को भिन्न-भिन्न स्वर प्राप्त होता है। यथा – राजपुरुषः।

व्याकरण शास्त्र में 'फिट् सूत्र' में फिषः अन्त उदात्त स्यात् फिषः फिट् सूत्रों में भी अन्तोदात्त का प्रयोग हुआ है।

भीमादि- पाणिनीय व्याकरण में शब्दों का एक समुह जिसमें आदि शब्द 'भीम' हो तथा शेष अन्य शब्द हो तो उसे प्रथम शब्द के आधार पर 'भीमादि' कहते हैं। पाणिनि ने 'भीमादि' शब्द का प्रयोग 'भीमदयोऽपादने'[14] सूत्र में किया है। भीम आदि उणादि प्रत्ययान्त शब्द अपादान कारक में निपातित हैं। 'भीमादि' शब्दों में एक ही कार्य की प्रवृत्ति को देखकर उन सभी शब्दों का भिन्न-भिन्न सूत्रों में पाठ करने की अपेक्षा स्वतन्त्र रुप से गण के रुप में पाठ किया जाता है। 'भीमादि' शब्द क्रमशः – 'भीम भीष्म भयानक वहचर प्रस्कन्दन प्रलपन समुद्र स्रुव स्रुक् वृष्टि रक्ष संकसुक मर्स बवति। आकृतिगणोऽयम्। इति भीमादिः' यह सभी शब्द भीमादिगण में पठित शब्द है। यथा – भीमः, भीष्मः, भयानकः।

भिदादि- पाणिनीय व्याकरण में शब्दों का एक समुह जिसमें आदि शब्द 'भिंद' हो तथा शेष अन्य शब्द हो तो उसे आदि शब्द के आधार पर 'भिदादि' कहा जाता है। पाणिनि ने 'भिदादि' शब्द का प्रयोग 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' सूत्र में किया है। कर्तृ भिन्न कारकों के अर्थ में, संज्ञा में तथा स्त्रीत्व भाव में 'षित्' धातुओं से तथा भिदादि धातुओं से अङ् होता है। भिदादि शब्दों में एक कार्य की प्रवृत्ति को देखकर उन सभी शब्दों का सूत्र पाठ करने की अपेक्षा स्वतन्त्ररुपेण गण के रुप में पाठ किया है। 'भीदादि' शब्द क्रमशः – 'भिदा विदारणे। छिदा द्वैधीकरणे। विदा क्षिपा। गुहा गिर्योषध्योः। श्रद्धा मेधा गोधा। आरा शस्त्रायाम्। हारा। कारा बन्धने। क्षिया। तारा ज्योतिष। धारा प्रपातने। रेखा चूडा पीडा वपा वसा मृजा। क्रपेः सम्प्रसाणं च कृपा। इति भिदादिः'।

यह सभी शब्द भिदादि गणपाठ में पठित है। वार्तिककार ने भिदादि गण में पठित शब्दों से वार्तिक का निर्माण किया है जो कि क्रमशः – 'गुहा गिर्योषध्योः'[15], क्रपेः सम्प्रसारणञ्च, 'भिदा विदारणे' 'छिदाद्वैधिकरणे', 'आराशस्त्रयाम्', धाराप्रपाते। यथा – जरा (जृष्+अङ्), मृजा, शिञ्जा, गुहा, कृपा।

गम्यादि- पाणिनीय व्याकरण में शब्दों का एख समुह जिसमें प्रथम शब्द गमी है तथा शेष अन्य शब्द हो तो उसे गम्यादि कहा जाता है। पाणिनि ने 'गम्यादि' शब्द का प्रयोग 'भविष्यति गम्यादयः' सूत्र में किया है। 'गम्यादि' शब्द क्रमशः – गमी आगमी भावी प्रस्थायी प्रतिरोधी प्रतियोधी प्रतिबोधी प्रतियायी प्रतियोगी। एते गम्यादयः ॥ गम्यादि शब्दों से विहित उणादि प्रत्यय भविष्यत् काल में होता है। यथा – ग्रामं गमी (गम् इन्), आगमी (आ गम् इन) प्रस्थायी, प्रतियोगी। यहाँ 'गमी', 'आगमी', प्रतियोगी, यह सभी शब्द गम्यादि गण में पठित शब्द है।

ग्रहादि- पाणिनीय व्याकरण में धातुओं का एक समुह जिसमें प्रथम शब्द ग्रह हो तथा शेष अन्य शब्द हो तो उसे ग्रहादि कहा जाता है। पाणिनि ने ग्रहादि शब्द का प्रयोग 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' सूत्र में किया है। 'ग्राहि' आदि धातुओं से 'णिनि' प्रत्यय होता है। ग्रहादि शब्द क्रमशः – 'ग्राहि उत्साही उद्यासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी। रक्षश्रुवपशां नौ निरक्षी निश्रावी निवापी निशायी। याचृव्याहसंख्याहव्रजववसां प्रतिषिद्धानाम्। आचायी आव्याहारी असंख्याहारी अव्राजी अवादी अवासी अचामचित्तकर्तृकाणाम्। अकारी अहारी अविनायी विशयी विषयी देशे। विशयी देशः अभिभावी भूते अपराधी उपरोधी परिभावी। इति ग्रह्यादि ॥' यथा – ग्राही (ग्रह्+णिनि), गृह्णातीति (ग्रह्+णिनि)। यह 'ग्रह' शब्द ग्रहादिगण में पठित शब्द है।

क्त्वा- 'क्त्वा' एक कृत् प्रत्यय है। 'क्त्वा' में 'क' कार इत् संज्ञक होने के कारण 'त्वा' शेष रहता है। प्राचीन आचार्यों के मतानुसार निषेधार्थक धातुओं में अलम् खलु उपपद रहते 'कत्वा' का विधान होता है। यथा – अलं वीर व्यथां गत्वा (गत्वा)। निर्धारिते अर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलू वाचिकम् (खलूक्त्वा) उदीच्याचार्य वैयाकरणों के मतानुसार व्यतीहारार्ध वाली 'मा' धातु के साथ 'क्त्वा' प्रत्यय का विधान होता है। यथा – याचित्वा उपमयते।

यदि किसा स्थान पर, पर का पूर्व के साथ तथा पूर्व का पर के साथ योग गतिमान हो तो धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। यथा – अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः।

यदि किसी ऐसी क्रिया के साथ जो अपेक्षया बाद के समय की हो तो पूर्व में घटित किसी क्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए यदि दो धातुओं के अर्थों का कर्ता एक ही हो तो किसी क्रिया का अर्थ पुर्वकालिक में स्थित हो तो उस पूर्व काल में स्थित धातु से 'क्त्वा' होता है। यहाँ पूर्वकालिक क्रिया में 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। यथा – देवं स्नात्वा अर्चति।

समान कर्ता वाले दो या अधिक धात्वर्थों में से पूर्वकालिक क्रिया में तथा क्रिया के बार बार होने के अर्थ में 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। यथा – स्यन्त्वा स्यन्त्वा। पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा।

अग्रे, प्रथम तथा पूर्व शब्द उपपद रहते समान कर्तृक पूर्वकालिक क्रिया में विकल्प से 'क्त्वा' होता है। यथा – अग्रे भुक्त्वा व्रजति।

पाणिनि ने 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'[16] सूत्र में क्त्वा पद का प्रयोग किया है। 'क्त्वा' प्रत्यय सर्वदा उपसर्ग रहित धातुओं के साथ प्रयुक्त होता है। धातुओं के साथ उपसर्ग होने पर क्त्वान्त अव्यय सदा उपसर्ग के साथ समस्त होकर 'ल्यप्' में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा – प्रकृत्य (प्र+कृ+क्त्वा, प्र+कृ+ल्यप्)

'क्तवाऽपिच्छन्दसि'[17] सूत्र में भी 'क्त्वा' पद का प्रयोग किया गया है। वैदिक साहित्य में अनञ् पूर्वपद वाले समास में 'क्त्वा' के स्थान पर ल्यप् आदेश ऐच्छिक रुप में होता है तथा 'क्त्वा' भी होता है। यथा – परिधापयित्वा उद्धृत्य 'क्त्वो यक्' सूत्र में भी 'क्त्वा' पद का प्रयोग हुआ है। वैदिक साहित्य में 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'यक्' आदेश होता है। यथा – दत्त्वाय, युक्त्वाय, कृत्वाय, हत्वाय।

अध्रुव- यह शब्द पाणिनीय व्याकरण में उस प्रकार के अङ्गो के लिए प्रयोग किया गया है, जिस अंग के काट देने पर भी प्राणी नहीं मरता है, वह अध्रुव अङ्ग कहलाता है।

'स्वाङ्गेऽध्रुवे'[18] सूत्र से अध्रुव स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त उपपद होने पर धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। स्वाङ्ग का अर्थ होता है अपना अङ्ग। यहाँ 'अध्रुवे' से आशय है कि ध्रुव स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त पद के उपपद रहते धातु से णमुल् होता है। अध्रुव शब्द के विषय में काशिकावृत्ति में कहा गया है कि 'यस्मिन्नङ्गे छिन्नेऽपि प्राणी न म्रियते तदध्रुवम्'।[19] यथा – उत्क्षिप्य शिरः कथ्यति।

अभ्रेष- 'अभ्रेष' शब्द का अर्थ – 'भ्रेषणं भ्रेषः' यथा प्राप्त स्वरुप से प्रच्युत हो वह शब्द 'अभ्रेष' कहलाता है। अमरकोश में 'अभ्रेष' शब्द को पारिभाषित किया गया है 'भ्रेषो भ्रंशो यथोचितात्'। 'पाणिनि ने परिन्योर्नीणोद्यूताभ्रेषयोः[20] इस सूत्र में 'अभ्रेष' पद का प्रयोग किया है। कर्तृभिन्न कारक के अर्थ में संज्ञा में तथा भाव में परि तथा नि उपसर्गों के उपपद रहते यथासंख्य नी व इण् धातुओं से द्यूत तथा 'अभ्रेष' के विषय में घञ् प्रत्यय होता है। यहाँ 'अभ्रेष' का प्रयोजन 'द्यूत' तथा 'अभ्रेष' के विषय में ही उक्त घञ् होना है। यथा – परिणयः, न्ययं गतः पापः।

काशिकावृत्ति के 'पदार्थानामनपचारो यथाप्राप्तकरणम् अभ्रेषः'[21] सूत्र में 'अभ्रेषः' शब्द को पारिभाषित किया है। आगम तथा लोक प्रसिद्धि के कारण से पदार्थों का अनपचार यथाप्राप्त करण जो वस्तु क्रम से प्राप्त होता है उसे करते जाना अभ्रेष कहलाता है। तथा

न्यास में 'अभ्रेष' शब्द के विषय में कहा गया है कि 'एतदुक्तं भवति युक्तेरागमाल्लोकप्रसिद्धिर्वा यः पदार्थानां प्राप्नोति तस्य सम्पादनमभ्रेषः एषोऽत्र न्यायः"

इस प्रकार कृदन्त प्रकरण में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या की गई है। इस व्याख्या से कृदन्त प्रकरण को आसानी से समझा जा सकता है, जो इस शास्त्र को और अधिक महत्त्व प्रदान करेगा।

सन्दर्भसूची –

1. अष्टाध्यायी – 3 / 1 / 133
2. पाणिनीय सूत्र – 2-1-33
3. अष्टाध्यायी – 2-3-71
4. सिद्धान्तकौमुदी – 7-3-52
5. पाणिनि सूत्र – 1-1-69
6. अष्टाध्यायी – 3-1-134
7. पाणिनि सूत्र – 1-1-26
8. सिद्धान्त कौमुदी – 3-2-124
9. अष्टाध्यायी – 3 / 4 / 9
10. व्याकरणमहाभाष्ये
11. अष्टाध्यायी – 3-1-12
12. पा. सू. – 3-2-162
13. अष्टाध्यायी – 6-4-96
14. पाणिनिन सूत्र – 3 / 4 / 74
15. महाभाष्ये (3 / 3 / 104 वार्तिक)
16. अष्टाध्यायी - 7-1-37
17. पा. सू. - 7-1-38
18. अष्टाध्यायी – 3-4-54
19. काशिकावृत्ति –
20. अष्टाध्यायी – 3-3-37
21. काशिका वृत्ति – 3-3-37